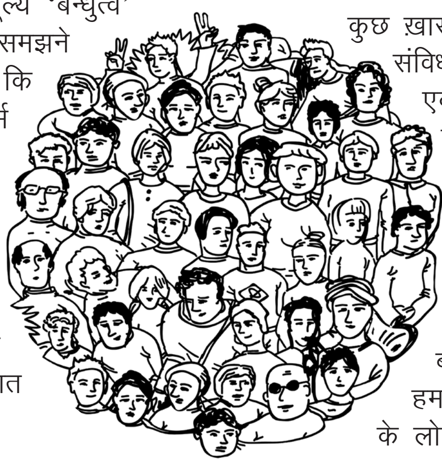
स्कूल की परिकल्पना का बुनियादी आधार है बन्धुत्व की भावना

संवैधानिक मूल्य और उनका शिक्षण एक महत्त्वपूर्ण विषय है। इस अंक के संवाद में संवैधानिक मूल्य **बन्धुत्व** को विमर्श के लिए चुना गया है।

इस संवाद में शामिल सदस्य हैं : सत्यम श्रीवास्तव, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल से; वरुण कुमार, शासकीय प्राथमिक शाला बेलतरा, कुल केन्द्र सोरम, ज़िला धमतरी, छत्तीसगढ़ से; मुकेश कुमार, ज़िला जशपुर, छत्तीसगढ़ से; रश्मि गौड़, गवर्नमेंट मॉडल प्राइमरी स्कूल श्रीकोट गंगानाली, ब्लॉक खिर्सू, ज़िला पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड से; गुरबचन सिंह, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल से; रवि पाठक, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला बाड़मेर, राजस्थान से; और हृदयकान्त दीवान, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु से। जगमोहन इस संवाद के फ़ैसिलिटेटर हैं, और वे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, देहरादून में हैं।

जगमोहन : स्कूल की अपेक्षा बच्चे का सम्पूर्ण विकास करना है। इस बातचीत का मुख्य मक़सद यह है कि बच्चे के सम्पूर्ण व्यक्तित्व, जिसमें विभिन्न मूल्यों की बात भी शामिल है, को गढ़ने के लिए हम स्कूल में क्या करते हैं? *पाठशाला* पत्रिका में पहले भी इस तरह के संवाद हुए हैं। आज के संवाद का फ़ोकस संवैधानिक मूल्यों में शामिल एक मूल्य 'बन्धुत्व' पर है। जिसमें यह समझने की कोशिश की गई है कि विभिन्न भाषाओं, जाति, धर्म व पृष्ठभूमियों के लोग आपस में शान्तिपूर्ण तरीक़े से एक साथ रह सकते हैं, आपस में गरिमामय व्यवहार कर सकते हैं, और स्कूल में इस दिशा में कैसे शुरुआत की जा सकती है।



इस सन्दर्भ में आप सभी से पहला सवाल यह है कि बन्धुता का क्या मतलब है, और ये महत्त्वपूर्ण क्यों है? रवि, आप इन सवालों पर कुछ कहें।

रवि पाठक : किसी भी टर्मिनोलॉजी के मायने समय और सन्दर्भ के साथ बदलते रहते हैं। किसी ख़ास समय और सन्दर्भ में उसके कुछ ख़ास मायने होते हैं। हर देश का संविधान होता है, और उसके पीछे एक दर्शन होता है। बन्धुता का ज़िक्र हर देश के संविधान में हुआ है, ऐसा नहीं है। हमारे संविधान में बन्धुता को महत्त्वपूर्ण जगह दी गई है, और आज़ाद हिन्दुस्तान के मूल्यों, उसके समाज के बारे में यह एक दृष्टि देती है। हमारे यहाँ पर अलग-अलग तरह के लोग हैं, उनके ज़िन्दगी जीने के

तरीक़े अलग हैं, वो चाहे भौगोलिक वजह से हों, धर्म, पन्थ, सम्प्रदाय, भाषा की वजह से हों, या फिर किसी और वजह से। खानपान, वेशभूषा, नृत्य, नाटक विविध तरह के हैं। ऐसा हिन्दुस्तान आज का राष्ट्रीय राज्य है। इस सन्दर्भ में बन्धुता का सीधा मायना ये है कि हिन्दुस्तान के सभी लोगों में एक सम्बन्ध है, वो जुड़े हुए हैं। यहाँ के लोग अलग होकर भी एक हैं, क्योंकि हम एक राष्ट्र के रूप में एकजुट हुए, और एक राज्य के रूप में भी हम एक हैं।

जगमोहन : सत्यम, आप बन्धुता को कैसे समझते हैं? क्या आपको लगता है कि यह एक ज़रूरी विषय है?

सत्यम श्रीवास्तव : इसका शाब्दिक अर्थ निस्सन्देह भाई-भाई के बीच का रिश्ता है। कुछ भाषाओं और संस्कृतियों में बन्धु शब्द को भले ही शाब्दिक तौर पर भाई के रूप में माना गया हो, लेकिन इसे बरता गया है दोस्त के रूप में। विशेष रूप से बंगाल में, जहाँ बन्धु, बोन्धु हो जाता है, और जो हर किसी के लिए एक अच्छे / सम्मानजनक सम्बोधन के तौर पर इस्तेमाल होता है। एक भाई जो दोस्त की माफ़िक़ हो। यानी, जहाँ जन्म प्रदत्त पहचानें तो समान हों ही, लेकिन उम्र, या क़द-काठी, या त्वचा के रंग, या अन्य किसी भी ख़ासियत की वजह से भी आपस में भेदभाव का कोई कारण उत्पन्न न हो। यूँ भी कह सकते हैं कि दोस्ती में जिस तरह दो शख़्स बराबर हो जाते हैं, वैसे ही ये दो भाई भी बराबर हों।

अगर इस शब्द के मूल में जाएँ, उसका अभिप्राय यही होता है कि दो ऐसे लोगों, जो एक ही माता-पिता की सन्तान हैं, के बीच जो रिश्ता है, वह भाईचारा है, बन्धुता है। यानी, दो सगे भाई जन्म से प्राप्त होने वाली तमाम पहचानों के मामले में बराबर हैं। उनमें कोई भेद नहीं किया जा सकता, इसलिए दोनों ही मूल रूप से बराबर हैं।

स्कूलों की परिकल्पना में बन्धुत्व की भावना को बुनियादी आधार कहा जा सकता है। पाठशाला परिसर में पहुँचते ही सारे बच्चे एक हो जाते हैं। जाति, धर्म, लिंग, त्वचा के रंग या माँ-बाप की सम्पत्ति के आधार पर उनके बीच मौजूद असमानता स्वतः समाप्त हो जाती है। हालाँकि, यह परिकल्पना कभी भी साकार नहीं हो सकी, और पाठशाला परिसर में बच्चे अपनी तमाम पहचानों के साथ ही दाख़िला ले रहे हैं। विशेष रूप से गाँवों में, जहाँ सब एक दूसरे को



जानते हैं, वहाँ अपनी जन्म प्रदत्त पहचानों से बाहर निकलना बहुत दुरूह काम है।

इसी परिस्थिति में, स्कूलों के अन्दर इस भाव या मूल्य की भूमिका सबसे ज़्यादा है, क्योंकि समाज में विद्यमान तमाम संस्थाओं की तुलना में आज भी स्कूल ही वो अवसर और स्थान हैं जहाँ इस मूल्य की सहज उपस्थिति को महसूस किया जा सकता है। बच्चे आपस में खेल रहे हैं, झगड़ रहे हैं, साथ में काम कर रहे हैं, एक दूसरे के लिए तालियाँ बजा रहे हैं, एक दूसरे से प्रतियोगिता भी कर रहे हैं, लेकिन आमतौर पर दूसरे की सामाजिक हैसियत को परिसर के अन्दर किसी हद तक हावी नहीं होने दे रहे हैं।

दूसरी बात है कि स्कूल के सबक तात्कालिक नहीं होते, बल्कि वो ताज़िन्दगी एक इंसान के साथ चलते हैं। नागरिक बनाने की पहली पाठशाला भी यही है जहाँ बच्चे / बालमन एक स्वरूप लेते हैं।



यह पूरा मामला ही महसूस करने का है। जीने का है। मूल्यों को ख़ुद में रूपान्तरित करने का है, जिसे कहते हैं ट्रांसफ़ॉर्मेशन का है। स्कूल, सही मायनों में बच्चों के लिए रूपान्तरण की जगहें हैं। यह महज़ उन्हें पढ़ा-लिखाकर, रटाकर या उनकी परीक्षा लेकर पूरा किया जाने वाला काम नहीं है, बल्कि इसके लिए शिक्षक को इन तमाम शैक्षणिक प्रयासों से आगे जाना होता है, और ख़ुद के आचरण, व्यवहार और जीवन जीने के तौर-तरीक़ों से उन्हें सिखाना होता है। यह देखकर अपनाई जाने वाली शिक्षा है। यह ब्लैकबोर्ड के अभ्यास नहीं हैं। इसके लिए एक वातावरण तैयार किया जाना ज़रूरी है। ऐसा वातावरण अकेले शिक्षक का भी काम नहीं है, बल्कि इसके लिए विद्यालय से सम्बद्ध तमाम पक्षों को इन मूल्यों में भरोसा रखने, और उन्हें अपने आचरण में ढालने की बुनियादी आवश्यकता है।

बहुत जगहों पर शिक्षकों ने ऐसे प्रयास किए हैं। स्कूलों में गणवेश की परिकल्पना इसी विचार की उपज है जहाँ विद्यार्थी के कपड़ों से उनकी हैसियत का अन्दाज़ा न लगाया जा सके, बल्कि सब एक जैसे दिखें। ऐसा ही माहौल रजिस्टर में उनकी एंट्री को लेकर है। एक ख़ास अनुक्रम में उनके नाम लिखा जाना भी इसी विचार का विस्तार है। स्कूलों के संचालन की जो भी प्रविधियाँ हैं उनमें इस विचार का ख़्याल रखा गया है कि परिसर या कक्षा के अन्दर आपसी भेदभाव के तमाम प्रत्यक्ष कारणों को दूर रखा जाए। लेकिन सबसे बड़ा दारोमदार अन्ततः शिक्षक का ही है कि वो कैसे इस माहौल को एक सबक के तौर पर अपने विद्यार्थियों तक पहुँचाए।

जगमोहन : मुकेश, आप इस बात में कुछ जोड़ना चाहेंगे?

मुकेश कुमार : दोनों साथियों ने बन्धुता की एक पृष्ठभूमि रखी है। मैं भी बन्धुता को उसी तरह से देखता हूँ। लोकतंत्र के जो तीन बुनियादी सिद्धान्त फ्रांस की क्रान्ति से उभरकर आए थे, वे हैं– स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व। बन्धुत्व के बग़ैर स्वतंत्रता का भी कोई अर्थ नहीं है। असल में, ये तीनों परस्पर पूरक हैं। बन्धुता दरअसल परस्पर मेल है। यदि बन्धुता न हो, समानता भी बहुत सीमित हो जाएगी। लेकिन जिस लोकतंत्र की हम कल्पना करते हैं, उसके अनुरूप समाज कैसे विकसित हो, देश-दुनिया कैसे विकसित हो, इसके लिए बन्धुता एक ज़रूरी मूल्य है। बन्धुता केवल देश की चारदीवारी की सीमाओं के मातहत न हो। बन्धुता एक व्यापक और ज़रूरी अवधारणा है। जाति, धर्म, वर्ण, जेंडर, रंग को लेकर तरह-तरह की दीवारें, पूर्वाग्रह

दुनियाभर के समाजों में मौजूद हैं, लेकिन इन सबके बीच सहअस्तित्व की बात भी है। सभ्य समाज, सभ्य दुनिया बनाने के लिहाज़ से बन्धुता एक ज़रूरी मूल्य है।

जगमोहन : शुक्रिया मुकेश! रश्मिजी और वरुणजी कक्षाओं में बच्चों के साथ काम कर रहे हैं। आप बताएँ, स्कूल में इस सन्दर्भ में क्या कर पाते हैं?

वरुण कुमार : हर विद्यालय में बच्चे अलग-अलग पृष्ठभूमियों से आते हैं। हम इन विविध वर्गों के बच्चों के साथ ही काम करते हैं। बहुत-से बच्चे रूढ़िवादी विचारधारा वाले परिवारों से आते हैं। हम स्कूलों में ऐसी गतिविधियाँ करते हैं, जो बन्धुता की भावना को पोषित करें, विकसित करें। शुरुआत प्रार्थना सभा से होती है। हमारे स्कूल में पहले लड़के और लड़कियाँ अलग बैठते थे, लेकिन अब बैठक व्यवस्था बदल दी गई है। जो बच्चे साधन सम्पन्न घरों से आ रहे हैं, उनकी यूनिफ़ॉर्म बढ़िया थी, वहीं कुछ अन्य की नहीं। इसलिए हमने इसमें भी एकरूपता लाने की कोशिश की। बच्चों से समानता और विविधता पर बात करना शुरू किया। हम सब एक ही तरह के हैं, क्योंकि हम सबका ख़ून लाल है। धीरे-धीरे, बच्चों में एक जुड़ाव बनने लगा। उन्होंने भी विद्यालय को एक परिवार के रूप में देखना शुरू किया। अब बच्चे एक साथ बैठना, बातचीत करना, खेल गतिविधियों में एक साथ काम करना पसन्द कर रहे हैं।

जगमोहन : रश्मिजी, अपने स्कूल के बारे में बताएँ।

रश्मि गौड़ : अभी तक कही बातों से मैं सहमत हूँ। हर किसी का अपना एक व्यक्तित्व होता है, और उसका एक सम्मान है। हम प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान कर पाएँ, उसे अपने जैसा ही समझ पाएँ, ये ही बन्धुता की भावना है। विद्यालय में होने वाले विभिन्न क्रियाकलापों में इस नज़रिए को हमने शामिल किया है।

हमारे यहाँ प्रार्थना सभा में कुछ बच्चे जल्दी आ जाते हैं, और कुछ थोड़ा देरी से आते हैं। हमने एक नियम बना रखा है कि जो बच्चे पहले आएँगे, वे लाइन में आगे खड़े होंगे। किसी भी बच्चे की कोई विशेष जगह नहीं है कि फलाँ व्यक्ति आगे खड़ा होगा या पीछे। जो पहले आएगा उसी क्रम में वो होंगे। उन्हें पता है कि जिस दिन मैं जल्दी आऊँगा मुझे आगे खड़ा होना है, और मैं देर से आऊँगा तो मुझे पीछे खड़ा होना है। सभा में हर भाषा को महत्त्व देने के लिए हमने प्रत्येक भाषा के लिए दिवस भी निर्धारित किए हुए हैं। दो दिन प्रार्थना सभा की सारी गतिविधियाँ अँग्रेज़ी में होती हैं, दो दिन हिन्दी में, एक दिन संस्कृत, व एक दिन गढ़वाली भाषा में सारी गतिविधियों का संचालन किया जाता है। प्रार्थना सभा का संचालन सभी कक्षाएँ बारी-बारी से करती हैं। जब कक्षा एक और दो की बारी आती है, तब उन्हें चौथी-पाँचवीं वाले बच्चे सपोर्ट करते हैं। शुरुआत में, गढ़वाली भाषा में बच्चे असहज थे, लेकिन धीरे-धीरे वे स्थानीय भाषा में भी अच्छे से प्रस्तुतियाँ करने लगे।

बच्चों को आपस में सहयोग कराना सिखाना भी हम ध्यान में रखते हैं। एनसीईआरटी की किताबों में बहुत-से ऐसे अध्याय हैं जिनके माध्यम से हम बच्चों से सीधेतौर पर बन्धुत्व की भावना पर बात कर पा

Sharing Our Feelings 13

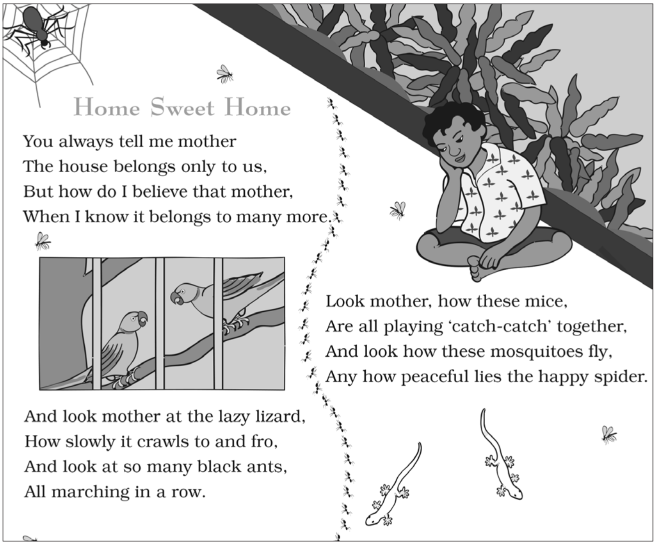


After returning home from school, there are two people with whom I like to share all my news. They enjoy listening to my tales.

The first person is my *nani*. She is always anxious to listen to me. She waits for me to return from school. She is quite old and often has back pains. She cannot see or hear well. Everyday in the morning, *papa* reads the newspaper aloud to her. She does the rest of her work herself. If someone tries to help her she gets very upset. Though she cannot see properly she is very fond of cutting vegetables. She says – these days children do not know how to cut vegetables properly.

The second person is my Ravi *bhaiya*. He lives with us. I call him Ravi *bhaiya* and he calls my parents –*bhaiya-bhabhi*. I do not

रहे हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा 3 में ईवीएस का एक अध्याय है 'शेयरिंग अवर फ़ीलिंग्स'। उसमें एक परिवार की बात है जिसमें एक लड़की स्कूल की बातें घर आकर अपनी नानी से शेयर करती है। नानी बुज़ुर्ग हैं, कम सुनती हैं, इसलिए लड़की ज़ोर से बोलती है। उसके पिताजी नानी को अख़बार पढ़कर सुनाते हैं। किताब में ऐसी गतिविधियाँ भी दी गई हैं कि प्रत्येक बच्चे की आँखों पर पट्टी बाँधकर उसे कुछ काम करने को दिया जाए। बाद में वह बताए कि उसको ऐसे काम करने में कैसा महसूस हुआ। इस तरह से हम एक ऐसे व्यक्ति की परेशानियों को, उसकी भावनाओं को समझ पाएँगे जो देख नहीं पा रहे हैं। एक और अध्याय 'होम स्वीट होम' नाम की एक कविता है। बच्चे कहते हैं कि यह सिर्फ़ हमारा ही घर तो नहीं है। इसमें छिपकली भी रहती है। मकड़ी और चूहे भी हमारे साथ रह रहे हैं। एक सहजीवन, बन्धुत्व की भावना की बात यहाँ आती है कि हम बन्धुत्व को मनुष्यों तक ही नहीं सीमित न रखकर इसको सभी प्राणियों व जीव-जन्तुओं तक भी ले जाने का प्रयास हम करते हैं।



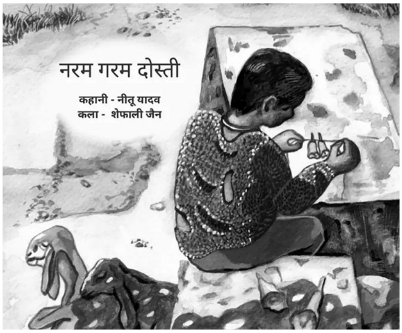
स्कूल में प्रत्येक महीने के आख़िरी शनिवार को उस महीने में जन्मे सभी बच्चों का जन्मदिन मनाते हैं। पूरी तैयारियाँ बच्चे ही करते हैं। अपने हर एक साथी के साथ जब वो सहयोग लेते हैं, उनमें कहीं-न-कहीं एक सहयोग की भावना बनती है। खाना खाते समय छोटे बच्चों का ध्यान रखना, कहीं उनको कोई सहायता की ज़रूरत तो नहीं है। हमारे यहाँ छोटे बच्चे पहले खाना खाते हैं, बड़े बच्चे उनकी सहायता करते हैं। उसके बाद बड़े बच्चे खाना खाते हैं।

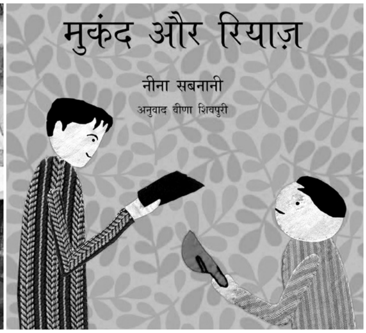
जगमोहन : वरुण, आप अपनी बात रखें।

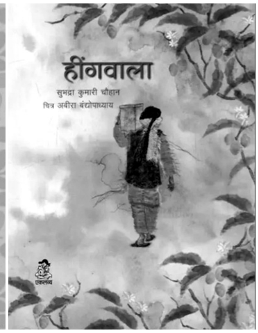
वरुण कुमार : हम लोगों ने बच्चों के साथ रचनात्मक लेखन की शुरुआत की है। बच्चों को स्थानीय स्तर पर जुड़ी चीज़ों से सम्बन्धित एक थीम देते हैं, और बच्चे अपने तरीक़े से अपने विचार लिखते हैं। सभी बच्चों के द्वारा किए गए कार्यों को हम एक प्रिंट फ़ॉर्म में दीवार अख़बार जैसा लगाते हैं, ताकि बच्चे अपने किए कार्यों को देख सकें। इससे बच्चे प्रोत्साहित होते हैं, और उन्हें कुछ और नया व बेहतर करने की इच्छा होती है। पूरे साल हर सप्ताह 1 दिन यह गतिविधि होती है जिसमें कक्षा 1 से 5 तक के सारे बच्चे भाग लेते हैं। बच्चे अपनी क्षमताओं के अनुसार चित्र बनाते हैं, कुछ वाक्य लिखते हैं, अनुच्छेद लिखते हैं। सभी बच्चों को समान रूप से कार्य करने का एक अवसर मिलता है। हम कहानी उत्सव का भी आयोजन करते हैं। इसका उद्देश्य गाँव के सभी बड़े-बुज़ुर्गों को जोड़ना है।

जगमोहन : रश्मिजी, आप बताएँ।

रश्मि गौड़ : हमारे स्कूल में वार्षिकोत्सव की तैयारी के दिनों एक मुस्लिम परिवार से तीन बहनों ने स्कूल में एडमिशन लिया। उनमें से सबसे बड़ी वाली लड़की स्कूल में हिजाब पहनकर आती थी। जब डांस के लिए बच्चों का चयन कर रहे थे, हिजाब पहनने वाली लड़की का चयन नहीं हुआ जबकि बाक़ी दोनों बहनों का हो गया। हमें लगा कि डांस कॉस्ट्यूम में हिजाब हटाना होगा, इसलिए तय किया कि







उसे डांस में न रखा जाए। लेकिन उसकी माँ ने स्कूल में आकर बात की, और बताया कि वह डांस करना चाहती है। उन्होंने कहा कि हिजाब ज़रूरी नहीं है, वह सिर्फ़ शौक़ से पहनती है। इस आपसी बातचीत से समस्या का हल निकल गया। कई बार बात उतनी भी उलझी नहीं होती है जितनी हम समझ बैठते हैं।

जगमोहन : गुरबचनजी, बन्धुता को समझाने में पाठ्यपुस्तकों का क्या इस्तेमाल हो सकता है?

गुरबचन सिंह : पाठ्यपुस्तक की अपनी कुछ सीमाएँ भी होती हैं, और पाठ्यपुस्तक की केन्द्रीयता के कारण कुछ मुश्किलें भी होती हैं। अतः पाठ्यपुस्तक के इर्द गिर्द संवैधानिक मूल्यों की बात करेंगे तो उसमें पाठ्यपुस्तक भी शामिल होगी, और तमाम वे किताबें भी शामिल होंगी जो शिक्षण प्रक्रिया का हिस्सा रहती हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि उन सीमाओं के रहते पाठ्यपुस्तकों में ऐसी सामग्री नहीं मिल पाती है जिनका इस्तेमाल इस तरह के मूल्यों को विकसित करने के लिए कर पाएँ। बच्चों को पढ़ाई जा रही किताब में दिख रहे स्पर्श बिन्दु जहाँ बन्धुत्व, विविधता, या किसी अन्य संवैधानिक मूल्य की बात हो, उसपर तर्कपूर्ण अवसर बनाते हुए बातचीत की जा सकती है। अभ्यास कार्य ऐसे बनाएँ कि वहाँ पर भी बच्चों के साथ मूल्यों पर गहराई से सोचने-विचारने की सम्भावना बन सके। कई बार किताबों को उलटते-पलटते हुए मुझे कुछ ऐसी नायाब किताबें दिखती हैं, जो शब्द की चर्चा किए बग़ैर बन्धुता की बात को काफ़ी सहजता और गहनता से उठाती हैं, व पाठक को बार-बार सोचने के लिए बाध्य करती हैं। मसलन, सुभद्रा कुमारी चौहान की चर्चित कहानी *हींगवाला*, मुस्कान से प्रकाशित *नरम गरम दोस्ती*, तूलिका प्रकाशन से छपी *मुकंद और रियाज़*, जुगनू से प्रकाशित *एक बड़ा अच्छा दोस्त* और *तारिका का सूरज* बच्चों के लिए कुछ ऐसी ही नायाब कहानियाँ हैं। इन कहानियों में भाईचारे की सुरक्षा भाव का स्पन्दन है। इनमें हर तरह की सीमाओं से ऊपर उठकर



कुछ नौजवानों ने ड्राइवर को पकड़कर मारने-पीटने का हिसाब बनाया। ड्राइवर के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। लोगों ने उसे पकड़ लिया। वह बड़े कातर ढंग से मेरी ओर देखने लगा और बोला, "हम लोग बस का कोई उपाय कर रहे हैं, बचाइए, ये लोग मारेंगे।" डर तो मेरे मन में था पर उसकी कातर मुद्रा

बिना शर्त, हर तरह का जोख़िम लेकर, एक दूसरे की देखरेख व मदद करने की जवाबदेही की गर्माहट महसूस की जा सकती है।

इसी तरह एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक *वसंत* भाग तीन में महत्त्वपूर्ण लेख है, 'क्या निराश हुआ जाए'। इसमें यात्रियों से भरी एक बस, जिसमें छोटे बच्चे और महिलाएँ भी होती हैं, दुर्गम क्षेत्र में रात के अँधेरे में ख़राब हो जाती है, और बस का कंडक्टर अचानक बस से उतरकर भाग जाता है। चिन्ता और घबराहट के मारे यात्री बस के ड्राइवर को बहुत भला-बुरा कहते हैं, और पीटने पर उतारू हो जाते हैं। अचानक वे देखते हैं कि एक बस आ रही होती है। यात्रियों को लगता है कि उनके साथ कुछ साज़िश हुई है। जैसे ही आने वाली बस यात्रियों के पास रुकती है, एक व्यक्ति कूदकर नीचे उतरता है। वह कहता है कि यह बस अभी ठीक नहीं हो सकती है, इसलिए उन सबको गन्तव्य स्थान पर भेजने के लिए पीछे से दूसरी बस लाया हूँ, और भूखे बच्चों के लिए दूध-रोटी। वह बस का कंडक्टर था। रात के अँधेरे में मीलों दौड़कर जाना, और अपरिचित यात्रियों के लिए यह सब करना, बहुत कुछ कहता है।



इस विवरण पर चर्चा करते हुए हमें बहुत सारे वो आधार मिलते हैं, जो बच्चों के साथ बातचीत में बन्धुता के मूल्य को बहुत अच्छे तरीक़े से रखने की कोशिश करते हैं, बग़ैर बन्धुता की बात को कहे। इस तरह के कई उदाहरण किताबों में तलाश सकते हैं। व्यक्तिगत प्रयास के तौर पर ही नहीं, एक पूरे शिक्षकीय समुदाय के सामूहिक प्रयासों के द्वारा यदि हम अपनी किताबों की मैपिंग करें, और ये देखने की कोशिश करें कि कौन-कौन सी रचनाएँ हैं, उन रचनाओं में हम कैसे बच्चों को, इन मूल्यों के साथ एंगेज कर सकते हैं। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए ये सफ़र बहुत ज़रूरी है। इस तरह की कुछ कहानियों पर रचनाओं के इर्द गिर्द अन्य माध्यमों के ज़रिए, कुछ प्रोजेक्टों पर भी काम करें, कुछ इस तरह के असाइनमेंट बच्चों को दें जिनसे वे उसके बारे में गहराई से सोच सकें, अपने विचार प्रस्तुत कर सकें, अपनी असहमतियों को पेश कर सकें, और इन मूल्यों को समझ सकें।

जगमोहन : कक्षा में इन मूल्यों पर काम करने के लिए किस प्रकार की तैयारी करनी पड़ती है?

रवि पाठक : इन मूल्यों पर बातचीत के लिए पाठ्यपुस्तक से इतर साहित्य की उपलब्धता, और बच्चों तक उसकी आसान पहुँच ज़रूरी है। मसलन, *त्रिशंकु* (मन्नू भंडारी) जैसी कहानियाँ। इस तरह की कहानियों पर बातचीत ज़रूरी है। ऐसा नहीं कि रोज़ इनपर बात हो, बल्कि जब लगे कि बातचीत का मौक़ा है, बात होनी चाहिए। और यदि शिक्षक भी इस तरह का साहित्य पढ़ते हैं, तब सामने ऐसा मुद्दा आने पर समझ जाते हैं, और उनके पास विकल्प भी होते हैं।

जगमोहन : मुकेश, आप अपने विचार रखें।

मुकेश कुमार : एक शिक्षक के उपदेश और बातचीत से ज़्यादा, उसके व्यवहार का असर बच्चे पर पड़ता है। कक्षा में या स्कूल में किसी परिस्थिति का सामना शिक्षक कैसे करते हैं, उसको देख बच्चे सीख रहे होते हैं। पहली-दूसरी के बच्चों के साथ काम करने के दौरान की एक घटना है। स्कूल खुला ही था। पहली-दूसरी की लड़कियाँ ख़ुद से अपनी कक्षा साफ़ कर रही थीं। झाड़ू एक ही थी, वे बारी-बारी से

काम कर रही थीं। लड़के साइड में खड़े थे। मैंने लड़कों से पूछा कि आप झाड़ू क्यों नहीं लगा रहे हैं। उनका जवाब था, झाड़ू देना लड़कियों का काम है। यह पहली-दूसरी के बच्चे हैं। समाज में जेंडर, कास्ट को लेकर मौजूद भेदभाव को बच्चे अपने जीवन में ग्रहण करते जाते हैं। शिक्षित लोग भी कई बार जातिवादी शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, जो ठीक नहीं है। कक्षा प्रक्रिया इन मान्यताओं को तोड़ने वाली होनी चाहिए। इसके लिए हम आपसी सहयोग के मौक़े गढ़ते हैं। जैसे, नहीं पढ़ पाने वाले बच्चों का अन्य बच्चे मज़ाक़ उड़ाते हैं। इससे बच्चे की गरिमा क्षतिग्रस्त होती है। कक्षा में हम पढ़ पाने वाले बच्चे को न पढ़ पाने वाले बच्चे की मदद के लिए बोलते हैं। इससे उनमें एक दूसरे को सहयोग करने की भावना का विकास होता है। मुझे लगता है, हमपर आज भी औपनिवेशिक असर है। अँग्रेज़ भारतीयों को हीन समझते थे, लेकिन हम अपने ही भाई-बन्धु को हीन समझते हैं। पढ़े-लिखे लोग भी कई बार बोलते हैं कि ये तो ग़रीबों के बच्चे हैं, ये क्या पढ़ेंगे? ये मज़दूरों के बच्चे हैं, ये फलानी जाति के बच्चे हैं, ये क्या पढ़ेंगे? जब हमारी चेतना इस तरह की होगी, हम समाज की विसंगतियों को स्कूल में भी रेप्लिकेट कर रहे होंगे।

जगमोहन : बन्धुता को लेकर जब काम करते हैं तो किस प्रकार की चुनौतियाँ आती हैं? आप कैसे उनका सामना करते हैं? हृदयकांत सर से मैं ये जानना चाह रहा था कि बन्धुता जैसे मूल्यों पर आपका क्या अनुभव रहा है?

हृदयकांत : मैं दो बातें कहना चाहता हूँ। एक मुद्दे के रूप में रखना चाहता हूँ, और दूसरी पूछना चाहता हूँ। होशंगाबाद में स्कूलों में काम करने के दौरान एक बहुत बड़ी चुनौती दिखती थी। स्कूलों में बच्चों की मान्यता वैसी ही थी, जैसा रवि ने कहा। मसलन, झाड़ू तो लड़कियाँ लगाती हैं, यह उनका काम है। स्कूल में शिक्षकों से मिलने जाने पर हमेशा लड़कियाँ ही हमें चाय-पानी पूछतीं। कई बार हेडमास्टर उनको चाय बनाने की ज़िम्मेदारी भी देते थे। आज वो होता है कि नहीं, मुझे नहीं पता। लेकिन तब मेरे दिमाग़ में दो सवाल आते थे। पहला, इन बच्चों को कक्षा से निकाला क्यों गया है? दूसरा, लड़कियों को ही क्यों निकाला गया है? अभी एक साथी ने कहा कि कुछ बच्चों को लेकर ऐसा माहौल होता था कि ये बच्चे अलग हैं, ये बच्चे फ़र्क़ हैं। साथी शिक्षिका ने बताया था कि उनके यहाँ एक मोहल्ले के बच्चे आ ही नहीं पाते थे, क्योंकि उनको स्कूल आने के समय दूसरे मोहल्ले में से होकर गुज़रना पड़ता था, और वहाँ से वो गुज़र नहीं पाते थे। उन्होंने काफ़ी संघर्ष किया। लेकिन उस संघर्ष का बहुत नतीजा वो नहीं निकाल पाए। फिर दूसरी तरफ़ एक और स्कूल बना, और उसमें वो बच्चे जाने लगे। इस तरह की परिस्थितियाँ आज भी हैं। मैं ये समझना चाह



रहा था कि क्या इस तरह की समस्याएँ अन्य लोगों ने भी कभी देखी हैं। एक चिन्ता का मसला यह था। दूसरा, बहुत सारी परिस्थितियों में बच्चे बग़ैर किसी के कहे ख़ुद ही किसी उत्पीड़न के बारे में बहुत पॉज़िटिवली, स्वाभाविक तौर पर एक दूसरे से अन्तर्क्रियाएँ करते रहते हैं, और एक दूसरे की मदद करते रहते हैं। इस स्वाभाविकता में बाहर की प्रक्रियाओं का, स्कूल के लोगों का काफ़ी योगदान हो सकता है। मैंने देखा है, कई शिक्षक बहुत पॉज़िटिव तरीक़े से इन मूल्यों को विकसित करने में कंट्रिब्यूट करते हैं, और वो ऐसी कविताओं और गीतों का चयन करते हैं। मैं दो बातें कह रहा हूँ। पहली, स्वाभाविक अन्तर्क्रिया को होने देना, और उसके प्रति जो नकारात्मक टिप्पणियाँ हैं उनको रोकना। दूसरा, सचेत रूप से कमज़ोर, बोलने में झिझकने वाले, स्कूल की भाषा नहीं बोल सकने वाले बच्चों को अपनी बात, अपनी भाषा में अभिव्यक्त करने देना। मैंने बहुत शिक्षकों को देखा है। उन्होंने इसपर बहुत कोशिश करके काम किया, और उन कक्षाओं में फिर उन बच्चों का बहुत पॉज़िटिव रोल रहा बाक़ी बच्चों के साथ बातचीत करने में। और एक काफ़ी अच्छा कोऑपरेटिव सीखने का माहौल भी बना।



जगमोहन : शिक्षक की समझदारी, नज़रिया, और उसकी संवेदनशीलता बहुत मायने रखती है। जब मैं स्कूल में काम कर रहा था, और अभिभावकों से बात होती थी कि क्या आपके यहाँ लड़के-लड़कियों के बीच में भेदभाव होता है। हमेशा जवाब आता था, नहीं होता है। कक्षा की बातचीत में बच्चे भी कहते कि नहीं होता है। फिर हमने कक्षा 6-7-8 के बच्चों के साथ एक प्रयोग किया था। बच्चों से कहा कि तुम रोज़ाना डायरी लिखो, और बच्चों ने लिखी भी। उस डायरी में कई बातें निकलकर आईं। उदाहरण के तौर पर, कक्षा 5 की कुछ लड़कियों ने लिखा : “मामा घर में आते हैं। वे भाई को गोद में उठाते हैं, मुझे गोद में नहीं उठाते हैं”; “दादी भाई को ज़्यादा मक्खन देती है, मेरे को कम देती है। मुझे ये कभी अच्छा नहीं लगता, पर कभी-कभी लगता कि चलो, भाई छोटा है, छोड़ देते हैं”; “हमारे यहाँ गाय है, कम दूध देती है, सिर्फ़ भाई को ही पीने को मिलता है”; “भाई को बुख़ार आने पर डॉक्टर के पास ले जाते हैं, मुझे घर पर ही दवाई दे देते हैं”; आदि। ऐसे तमाम उदाहरण थे। ये डायरी जेंडर भेदभाव को समझने के लिए बहुत कारगर हुई। इस काम से हमारा भ्रम भी टूटा, और हम लड़कियों की स्थिति को लेकर और संवेदनशील भी हुए। एक और वाक़िए से यह समझ बनी कि बच्चों के साथ उनकी ऐसी मुश्किलों को लेकर काम किया जाए, लेकिन तब उनकी निजता का भी ख़्याल रखा जाए। मैं पुनः यह सवाल दोहराता हूँ कि स्कूलों में ख़ासतौर से बन्धुता को लेकर किस प्रकार की तैयारी करने की ज़रूरत पड़ती है, और क्या चुनौतियाँ आती हैं।

वरुण कुमार : हमारे विद्यालय के बच्चों के पालक लगभग रोज़ सुबह मज़दूरी करने निकल जाते हैं, और शाम को वापस आते हैं। आर्थिक समस्या है ही, और इस वजह से बच्चे कुपोषित हैं। नतीजा यह होता है कि बच्चों को काफ़ी कमज़ोरियाँ रहती हैं, और वे बीच-बीच में बीमार भी होते रहते हैं। पालकों का कहना था कि लड़के-लड़कियों में बहुत भेदभाव किया जाता है। लड़का कुलदीपक है, परिवार को आगे ले जाएगा, इसलिए उसको प्राइवेट स्कूल में भेजते हैं (उनका मानना है कि प्राइवेट स्कूल अच्छा है), और लड़की को सरकारी स्कूल में। जब संवैधानिक मूल्यों को लेकर एसएमसी में बातचीत की, पुरुष और महिला के काम को देखा, उसमें भी पाया कि पुरुष केवल बाहर के ही काम देखते हैं। बाक़ी

सारे काम सुबह से लेकर रात तक महिलाएँ ही करती हैं। माने, घर पर भी बच्चों को एक विपरीत माहौल ही मिलता है। हम पालकों से लगातार मिले, उनसे इसपर लगातार बातचीत की, तब धीरे-धीरे लोग हमसे जुड़ते गए। स्कूल में बालिकाओं की दर्ज संख्या और उपस्थिति भी बढ़ी है। हम पुस्तकालय भी संचालित कर रहे हैं। बच्चों को स्कूल में पढ़ने के अलावा, घर पर भी किताब ले जाने के लिए देते हैं। बच्चे ख़ुद पालकों के साथ बैठकर कहानियों, और उन पुस्तकों पर बातचीत कर रहे हैं।

जगमोहन : शुक्रिया। कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दु, यदि कोई रखना चाहें?

रश्मि गौड़ : जब मिड-डे मील योजना शुरू हुई थी, तब हमारे स्कूल में एक वर्ग हमेशा सभी के साथ बैठकर खाने से इंकार करता रहा है, और कुछ हद तक अभी भी, क्योंकि हमारे समाज में हैं ये चीज़ें। इससे हमको स्कूल में दिक़्क़तें आती हैं। कुछ अभिभावकों ने कहा कि हम अपने बच्चों को स्कूल का खाना नहीं खाने देंगे। फिर हमने एक बैठक रखी। बातचीत में उन्होंने शर्त रखी कि बच्चे खाना तब खाएँगे जब वे अलग-अलग समुदाय के अनुसार भोजन करने बैठेंगे। कुछ दिन तो ऐसा रहा, लेकिन इसके बाद बच्चे कक्षावार बैठने लगे। ख़ैर, अब सभी साथ में खा लेते हैं, लेकिन कभी-कभी दिक़्क़त आती है। जैसे, एक बच्चे को उसकी दादी ने स्कूल में दूसरे बच्चों के साथ खाना खाते देखा, वो बड़ी नाराज़ हो गईं। उन्होंने बिना बताए अपना बच्चा हमारे स्कूल से निकालकर दूसरे स्कूल भेजना शुरू कर दिया। बहुत-सी ऐसी समस्याएँ होती हैं, और ऐसी परिस्थिति में कई बार हम अपने-आप को एक तरह से असहाय-सा महसूस करते हैं। बच्चे भी सवाल करते हैं कि वो बच्चा अचानक से क्यों स्कूल से चला गया। हम शिक्षकों पर भी ये प्रश्न चिह्न आते हैं। अभी भी समाज में ऐसी चीज़ें बहुत गहरी हैं, जिनको हम एकदम से निकाल नहीं सकते। बच्चा समाज से आ रहा है, और शिक्षक भी समाज से ही आ रहा है। ज़रूरी नहीं कि हर शिक्षक बन्धुत्व की भावना, या संवैधानिक मूल्यों को लेकर स्कूल में आए।

जगमोहन : आपकी बात से समझ में आता है कि इस सारी बातचीत में शिक्षक का संवेदनशील होना, शिक्षक की समझ होना, एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। दूसरा, स्कूल में, चाहे असेंबली का टाइम हो या खेलकूद का, प्रार्थना हो, क्लासरूम या कोई दूसरी गतिविधियों की जगह, जहाँ मौक़े तलाशते हुए हमको कुछ करने की ज़रूरत पड़ती है। और जब कुछ करने की ज़रूरत की


चित्र : हीरा धुर्वे

बात करें, तब संवाद, बातचीत, और सवाल, ये महत्त्वपूर्ण टूल हैं। इनका उपयोग करना ही होता है। पर इसके अलावा भी कुछ करने की ज़रूरत है, जिससे बच्चों में सेंसिटिविटी, वो एम्पथी बढ़े। फिर चाहे वो एक्ट करवाना हो, उसको रियलाइज़ करवाना हो, फ़िल्म की स्क्रीनिंग हो, या वो स्टोरी टेलिंग हो, या कहानी के माध्यम से उनको कुछ महसूस करवाना, यह बहुत कुछ करने की ज़रूरत पड़ती है। छुट्टी के दिन देर शाम तक इतना समय दिया, इसके लिए आप सभी का बहुत-बहुत शुक्रिया।